गोहुअन (उपन्यास) और आदिवासी स्त्री का विद्रोह

डॉ. इबरार खान
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज
गया- 823001 (बिहार)
मो. 8712375016
ई-मेल ibkhan88@gmail.com

सारांश

आदिवासियों की ज़मीन पर ठाकुर आर्मड लोग कब्जा किये रहते हैं। जो विवादित ज़मीन है उसे सरकार लेगी और क्षतिपूर्ति देगी। सवाल ये है कि ये विवादित ज़मीन है। सरकार किसे क्षतिपूर्ति देगी? मामलों को रफा दफा करने के लिए सब लोग बैठक करते हैं।

बीज शब्द- आदिवासी, जनजाति, शोषण ।

प्रस्तावना

भारत में स्त्रियों की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। इस हेतु विभिन्न संस्थाओं, व्यक्तियों द्वारा सतत प्रयास जारी है। स्त्रियों के विषय में देखें तो प्रत्येक धर्म व जाति की स्त्री में स्त्रीत्व के नाते समानता तो है परन्तु उनकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक हैसियत में अंतर है। यही अंतर हमें सोचने पर विवश करता है कि सभी स्त्रियाँ समान नहीं हैं और उनकी वर्जनाएँ तथा प्रताड़नाएँ भी समान नहीं हैं।

भारत की सामाजिक स्थिति को देखें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (दलित) दिखते हैं। यह बँटवारा तो हिन्दू धर्म के अनुसार है। इस्लाम में हालांकि जातिगत व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं है लेकिन मुसलमानों के यहाँ भी जातिभेद नहीं है ये कहना गलत है। आदिवासी समाज की अपनी एक अलग ही दुनिया है। हाँ, ये अवश्य है कि वहाँ भी तथाकथित मुख्यधारा के सामाजिक लोग पहुँचकर आदिवासी स्त्रियों पर अपना अधिकार जमाने, उनका शोषण करने का एक मौका भी नहीं छोड़ते। आदिवासियों की ज़मीन फर्जी काग़ज़ात के जरिये हड़प लेना तो जैसे आम बात रही है।

हमारे सामने एक प्रश्न आता है कि आखिर आदिवासी किसे कहा जाए? आदिवासी के लिए 'वनवासी', 'गिरिजन', 'मुसहर' (कम प्रचलित लेकिन गाँवों में प्रचलित) आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। आदिवासियों के संदर्भ में डॉ. विनायक तुकाराम लिखते हैं- "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगलों-पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव-समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दुख तथा नष्ट हुए संसार पर दुख प्रकट किया जाता है।"[1] आदिवासी को भारतीय संविधान के अनुच्छे 342 में अनुसूचित जनजाति के रूप में बताया गया है। हमारे कई तथाकथित विद्वान लोग 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग करने से बचते हैं। जबकि 'आदिवासी' शब्द में आदिवासियों की पहचान, उनकी अस्मिता समाहित है। रत्नाकर भेंगरा, सी.आर. बिजोय लिखते हैं- " 'आदिवासी' शब्द आदिवासियों की भावनाओं के अनुरूप है। उन्हें अनुसूचित जनजाति कहने का एक ही अर्थ है- उन्हें समाप्त करना। अभी तक उन्हें गिरिजन, वनवासी, दास, दस्यु तथा जंगली आदि कहा जाता रहा है, जिसकी चर्चा कई विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में की है। एम.सी. रॉय ने अपनी पुस्तक में इन्हें इस तरह के अपमानजनक शब्दों का दंश झेलना पड़ा है। जो आज तक जारी है।"[2] सही बात तो यह है कि एक साजिश के तहत लोग उन्हें 'वनवासी' आदि कहते हैं। हमारे विद्वान 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे। उसकी जगह तरह-तरह के शब्द ढँढ़कर लाएँगे। सत्य तो यही है कि आदिवासी श्याब्द ही ज्यादा ठीक है। माया बोरसे लिखती हैं- "आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए मूल निवासी शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। अर्थात् आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है।"[3] इन सबके बीच आज उसी आदिवासी को, मूल निवासी को उसके जंगल से दूर होने के लिए विवश किया जा रहा है।

दलितों के संदर्भ में चर्चा करते समय गाँधी जी का जिक्र भी आता है। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि गाँधी जी स्वयं भी आदिवासियों की स्थिति को लेकर चिंतित थे। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में दिनांक 18.01.1942 को लिखा था- " 'आदिवासी' नाम उन लोगों को दिया है, जो कि पहले से ही इस देश में बसे हुए थे। उनकी आर्थिक स्थिति हरिजनों से शायद ही अच्छी होगी। लम्बे अरसे से अपने आपको 'उँचे वर्गों' के नाम से पुकारने वाली हमारी जनता ने उनके प्रति जो बेपरवाही बताई है, उसका परिणाम उन्हें भोगना पड़ा है।"[4] वर्तमान में 'हरिजन' शब्द गैरकानूनी है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभिन्न धर्मों के मानने वालों ने आदिवासियों के लिए कुछ काम किये, लेकिन उसमें उनका अपना स्वार्थ भी जुड़ा था। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि ईसाइयों ने आदिवासियों के बीच काफी काम किया। उनकी शिक्षा व उनके स्वास्थ्य पर ध्यान दिया। हाँ, ये अलग बात है कि उनका मूल उद्देश्य आदिवासियों को ईसाई बनाना था।

आदिवासियों की परिस्थति पर रमणिका गुप्ता ने प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य किया है। वे लिखती हैं- "आदिवासी खदेड़े जाते रहे, विस्थापित किये जाते रहे और वे यायावरी बंजारों सी जिंदगी जीने के लिए बाध्य किये जाते रहे। इनकी ज़रूरत थी जंगल, जल, ज़मीन और महाजनों सामंतों से मुक्ति। उनके साथ अस्पृश्यता की समस्या उतनी बड़ी नहीं थी, चूँकि वे समाज से ही अलग-थलग रहते थे। उनका स्वाभिमान ही उन्हें आबादी से दूर जंगलों में ले गया था।"[5] वर्तमान में उन्हें इन्हीं लंगलों से दूर किया जा रहा है। आज जबकि हम कोविड-19 से जंग लड़ रहे हैं। डोज (खुराक) पर डोज (खुराक) ले रहे हैं। फर्स्ट डोज, सेकंड डोज और अब बूस्टर डोज। इसके बावजूद मास्क और सैनिटाइजर/साबुन का प्रयोग जारी है।

आदिवासी तथाकथित सभ्य समाज से दूर रहे, लेकिन वर्तमान संदर्भों में उसका उन्हें लाभ मिला। बकौल ककसाड़ पत्रिका के संपादक राजाराम त्रिपाठी- "यह महामारी वन ग्रामों में तथा विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में प्राय: स्वस्थ आदिवासी, वनवासियों का बाल भी बाँका नहीं कर पाई है।"[6] इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदिवासी प्राकृतिक सौंदर्य व प्रकृति के करीब रहते हैं। इससे उन्हें स्वच्छ, वायु, पोषण से युक्त खाद्य पदार्थ मिलते हैं जिससे उनके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत अच्छी होती है। इन सबके बीच हम उन्हें उनके अधिकारों से वंचित नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिए।

आदिवासी स्त्रियों पर भी विद्वानों/विदूषियों ने लेखनी चलाई है। उन्हीं में एक नाम महाश्वेता देवी का है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का नाम भी उल्लेखनीय है। हम यहाँ महाश्वेता देवी द्वारा लिखित उपन्यास 'गोहुअन'पर विचार-विमर्श करेंगे। महाश्वेता देवी के तीन उपन्यास 'दौलति', 'बासमती' और 'गोहुअन' एक पुस्तक के रूप में 'दौलति' नाम से प्रकाशित है। इन तीनों उपन्यासों में आदिवासी में आदिवासी स्त्री केंद्र में है। 'गोहुअन' उपन्यास में आदिवासी स्त्री का नाम 'गोहुअन' सर्प को दृष्टिगत रखते हुए रखा गया है। यह एक विषैला सर्प होता है, जिसका ज़हर बहुत घातक होता है और इसके डसने से मृत्यु तक हो सकती है।

इस उपन्यास में तत्कालीन पलामू बिहार (वर्तमान झारखण्ड) की कथा है। वहाँ के आदिवासी विशाल भूँइया के विषय में यह कहा जाता है कि वह खदान में खुदाई के समय मिट्टी धँसने से मर गया। उसकी पत्नी 'झालो' जिसकी एक बेटी सोना है उसे सोना दासी की माँ कहकर पुकारा जाता है। यह उपन्यास आदिवासियों को बँधुआ मज़दूर बनाकर उनसे काम कराने की भी कथा कहता है। झालो (बाद में गोहुअन) केचकि गाँव की रहने वाली है। ठेकेदार लक्ष्मण सिंह यह जानना चाहता है कि आखिर इस झालो नामक महिला का नाम 'गोहुअन' कैसे पड़ गयी? गाँव में बँधुआ प्रथा के विषय में भी चर्चा होती है कि यह कितनी पुरानी है? कोई कहता ये दास प्रथा भगवान ने ही बनाई है। कोई कहता पलामौ के पहाड़, नदी-नाले और अंगल जितने पुराने हैं। ये बँधुआ दास प्रथा भी उतनी ही पुरानी है। केचकि गाँव में माधो सिंह खरोयार आता। वह बताता ये सारी बातें झूठी हैं। वह बताता है- "पलामो में पहले चेरो जाति का राजा था। उन्होंने कभी किसी को बँधुआ नहीं बनाया।"[7] वह आगे भी बताता है- "भैया! चेरो, खरोयार, कोल, दुसाद, गंजू, घासी, नागेसिया, परहाइया- ऐसी ही तमाम जातियों के लोग थे। ऐसी कई जातियों के लोग यहाँ आबाद थे।"[8] केचकि में राजपूत, ब्राह्मण व आदिवासी लोग रहते थे। मालिक वर्ग राजपूत था। ये राजपूत लोग आपस में भी ज़मीन-जायदाद के लिए लड़ते रहते थे। राजपूतों का अपना वर्चस्व भी था। चाहे राजनीति के बीच चाहे जनता के बीच लेकिन वे जितनी सुविधा की अपेक्षा करते थे उन्हें नहीं मिलती थी। कारण था उनका आपसी विवाद। एक राजपूत एक केस में वकील से बात करते हुए कहता है- "वकील साहब! आप तो कायस्थ हैं, राजपूत की हठ आप समझ नहीं सकते। हम पैदाइशी लड़ाकू हैं। इतिहास गवाह है। पलामौ में भी हम अदालत में लड़ते-भिड़ते हैं, कभी मैदान नहीं छोड़ते। जिस राजपूत के पास जगह-ज़मीन हो पर कोई

मामला-मुकदमा न हो, वह कैसा राजपूत? उसे तो हम कायर कहते हैं।"[9] इस कथन पर न जाने क्यों हँसी आती है। किसी ज़मीन यदि आदिवासियों की ज़मीन कब्जा करके ज़मीन वाले बन बैठे।

लाठा-टोली नामक जगह केचकि के अंतर्गत थी लेकिन काफी दूर थी। जहाँ लाठा-टोली समाप्त होती थी। वहीं से विवादास्पद ज़मीन शुरू होती थी। उस ज़मीन के अंतिम छोर पर विशाल का घर था। वहाँ उसकी पत्नी गोहुअन रहती थी। उसके नाम गोहुअन पड़ने के पीछे एक विशेष घटना है। विवादित ज़मीन का नाप-जोख के सिलसिले में अमीन साहब आए। तम्बू लगाए गए। इसके पहले के अमीन लोग चावल, घी, बकरा तथा बँधुआ परिवारों से औरतें भी लेते थे। इस बार जो अमीन आए वे बहुत ईमानदार थे। इस कैम्प में चपरासी, चैन-मैन, कानूनगो थे। इसके साथ-साथ एक तहसीलदार भी आया था। यह पलामौ का निवासी था। उसे औरतों का चस्का था। बस उसी मैदान में ये लोग शौच के लिए आते थे। तहसीलदार वहीं झाड़ी में छिपा बैठा था। उसने झालो को दबोच लिया। वह चीखने लगी और अंतत: तहसीलदार के हाथ में दाँत काट लिया। बड़ा झमेला हुआ। सरपंच जी बताते हैं कि उस समय मैं सरपंच था। मेरे ऊपर भी दबाव पड़ रहा था। सातवान आदि ने मुझसे कहा- "ऐसे अपराध पर आप भी विचार कीजिए औरतों की इज्जत इसी तरह लूटी जाती रही तब तो दंगा फसाद करके लोग इधर-उधर भाग जाएंगे। गरीबों को तो वकील-अदालत-पुलिस किसी पर विश्वास नहीं। मारपीट कर भाग जाएंगे। और यह भी कितने ताज्जुब की बात है कि हम लोग अछूत हैं, हमारा छुआ पानी तक अछूत है, लेकिन हमारी औरतें अछूत नहीं।"[10] तहसीलदार को अमीन बाबू ने डाँट-फटकार कर वापस भेज दिया। कैम्प उठा लिया गया। अमीन साहब ने झालो के सिर पर हाथ रखकर कहा- "ये मक्कार तुम्हारी इज्जत लूटने आये थे। तुमने तो गोहुअन की तरह सिसकार कर उसे डस ही लिया।"[11] इसी से झालो का नाम गोहुअन पड़ गया।

गोहुअन तक-वितर्क भी करती थी। विशाल ने कुछ पैसा लिया था। उसी के आधार पर गोहुअन से सरपंच जी बेकार कराना चाहते थे लेकिन उसी आदिवासी स्त्री ने ऐसा फटकारा कि सरपंच जी देवता बन गये। गोहुअन ने कहा- "जिसने रुपया लिया है, उसी को बेगार खटना पड़ेगा। मैंने अँगूठा नहीं लगाया, रुपये नहीं ली, मैं क्यों बेगारी करूँ?"[12] इधर गोहुन का पति खुदाई के दौरान मिट्टी दबने से मर जाता है ऐसा लोग समझते हैं। वहाँ पैसे कम मिलते हैं सो रुपये फिर दो सौ रुपये की नोट के लालच में मजदूर खुदाई करते हैं और मिट्टी धँसने से मर जाते हैं। विशाल किसी तरह बच जाता है। जहाँ तक विज्ञापनों का सवाल है तो वे केवल दिखाने के लिए होते हैं। उससे गरीबों को कोई खास लाभ नहीं मिलता।

इस उपन्यास से यह भी बात ज़ाहिर होती है कि आदिवासियों की ज़मीन पर ठाकुर आर्मड लोग कब्जा किये रहते हैं। जो विवादित ज़मीन है उसे सरकार लेगी और क्षतिपूर्ति देगी। सवाल ये है कि ये विवादित ज़मीन है। सरकार किसे क्षतिपूर्ति देगी? मामलों को रफा दफा करने के लिए सब लोग बैठक करते हैं। उस बातचीत के अंश देखने पर हमारे होश उड़ जाते हैं। पूरी साजिश का पर्दाफाश हो जाता है। "पुराने काग़ज़ात देखे जाएँ तो यह बात सामने आयेगी कि वह ज़मीन आदिवासियों की हैं। वह भी किन आदिवासियों की? .... परहाइया और नागे सियाओं की। केचकि खण्ड उन्हीं का था। हम तो अब भी कुछ ज़मीन का लगान मोरी के बाप के नाम से भरते हैं और जो नागेसिया लोग पहाड़ के ढाल पर चूहों की तरह रह रहे हैं, वे ही उस ज़मीन के असली मालिक हैं।"[13] एक दिन रात में विशाल आता है। वह सारी बातें बताता है। हँसी-खुशी का माहौल है। उसने समुन्दर (सरपंच) से कहा- "हाँ, मालिक! उस सौ रुपये का कोई हिसाब नहीं दूँगा मैं। मेरी ...कामियौती .... खत्म। ....आइए, आइए, बाबू लक्ष्मण सिंह ठेकेदार! थोड़ा हिसाब तुम्हारा भी बाकी है। सत्रह जानें गयी थीं, लक्ष्मण बाबू? ...लाठा टोली के लोग मालिकों को और लक्ष्मण के घेरकर नज़दीक आते जा रहे थे। हर व्यक्ति गोहुअन लग रहा था। जिसकी फुफ्कार में निश्चित मौत थी।"[14] आपसी एकता और समझदारी से आदिवासी किस तरह अपने मालिक का काल बन सकता है, यह इस उपन्यास में साफ तौर पर दिखता है।

इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री की चेतना, उसका विद्रोह दिखने के साथ-साथ हमें आदिवासी समाज के कष्ट उनकी जिंदगी, बँधुआ दास प्रथा, शोषण चक्र आदि दिखते हैं। आज की युवा पीढ़ी बिजली की माँग करती है। ट्यूबवेल लगाने, उन्नत खेती करने की बात करती है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उपन्यास में दिखने वाली युवा पीढ़ी अपनी चेतना से अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यहाँ गोहुअन एक प्रतीक है। जिसका महाश्वेता जी ने सफल प्रयोग किया है। गोहुअन (झालो) आदिवासी स्त्री की अस्मिता के लिए लड़ती है। उसे आज का हमारी तथाकथित सभ्य समाज 'तेज़ औरत है', 'ज़बानदराजी करती है' भले ही कहे लेकिन ये उस आदिवासी स्त्री का विद्रोहात्मक स्वर है। इसे विद्रोहात्मक स्वर को अवश्य ही सुना जाना चाहिए। उस पर तवज्जो दी जानी चाहिए।

संदर्भ-सूची

1. आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता, सं. 2016, पृ. 26-27, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. वही, पृ. 36
3. वही, पृ. 86
4. मेरे सपनों का भारत, मोहनदास करमचंद गाँधी, संग्रहकर्ता- आर.के. प्रभु, सं. दूसरा मई, 2018, पृ. 274, सर्वसेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी।
5. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, सं. 2008, पृ. 7
6. ककसाड़, संपादक - राजाराम त्रिपाठी, वर्ष 6, अंक 66, जुलाई-अगस्त, 2021 संयुक्त अंक, पृ. संपादकीय (4), मुख्य कार्यालय - सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, पटपड़गंज, दिल्ली
7. दौलति, महाश्वेता देवी, अनुवाद - दिलीप कुमार बनर्जी, सं. 2013, पृ. 161, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. वही, पृ. 161
9. वही, पृ. 169
10. वही, पृ. 185
11. वही, पृ. 185
12. वही, पृ. 183
13. वही, पृ. 195
14. वही, पृ. 202